तीर्थश्रेष्ठ

गंगासागर

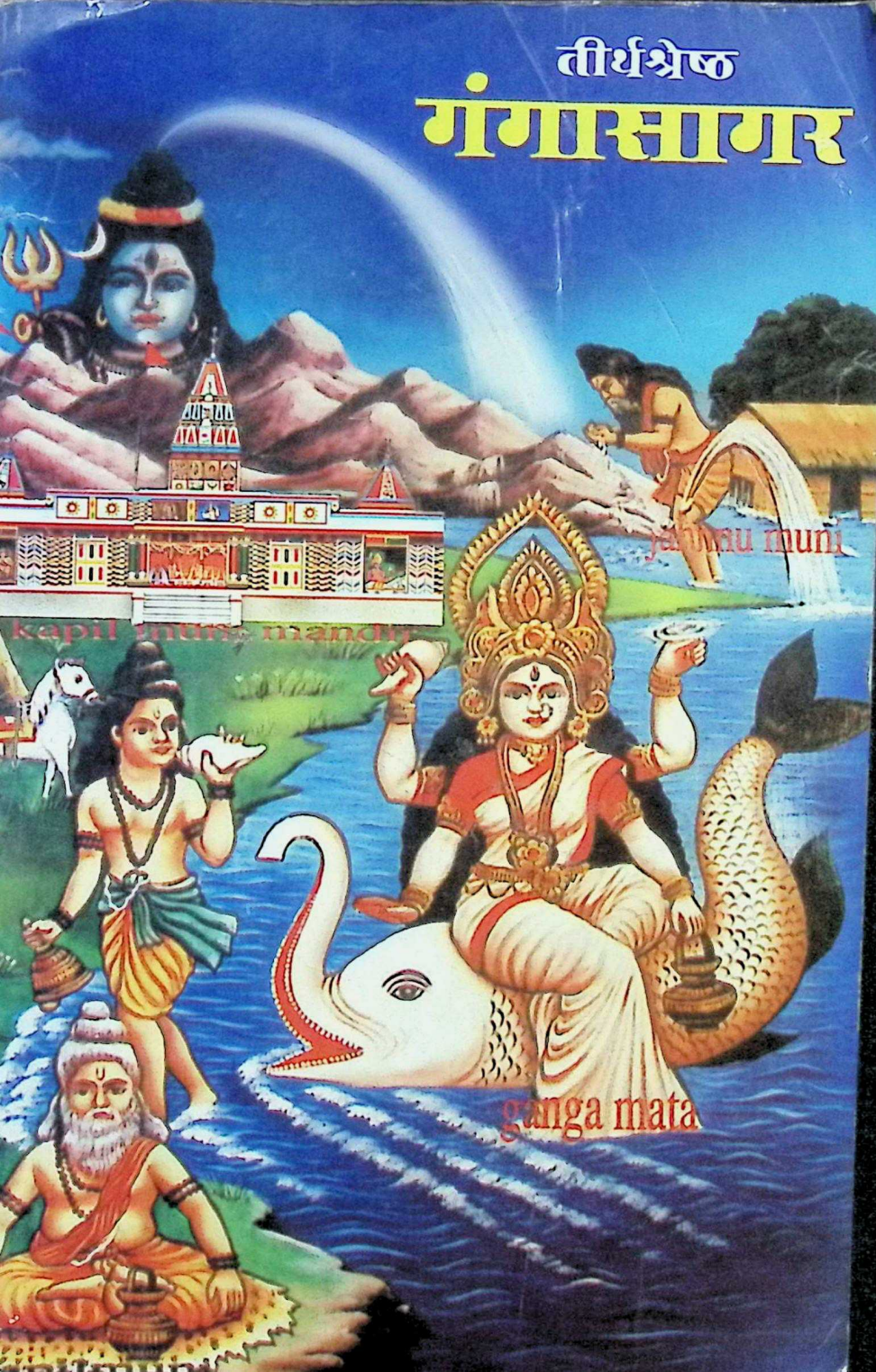

तीर्थश्रेष्ठ

गंगासागर

सत्यनारायण चौधुरि

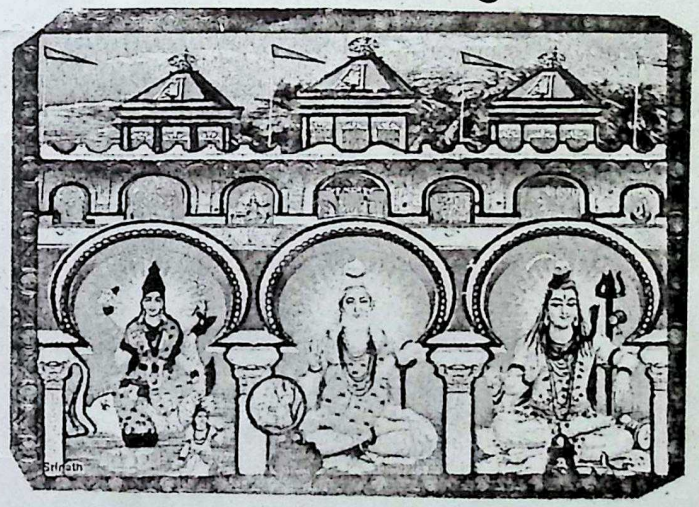

माँ बासन्ती बुक स्टल
कालीबाजार, सागर, दः २४ परगना

प्रकाशक :
श्यामापद राना
माँ वासन्ती बुक स्टल
कालीवाजार, सागर
दः २४ नरगना (प. व.)

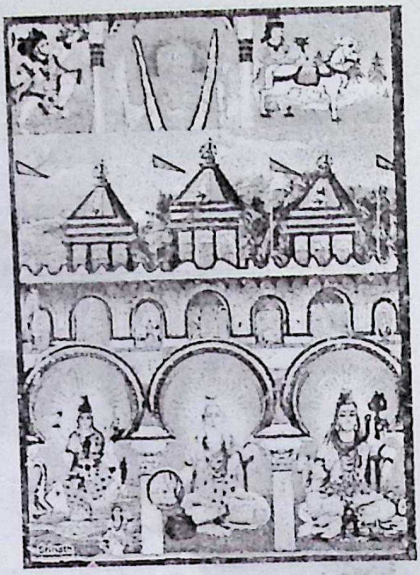

प्रथम प्रकाश :
९ पौष, १४०८

द्वितीय प्रकाशः
१ वैशाख, १४२१

मूल्य : २०.०० रूपयें मात्र

प्राप्तिस्थान

शिशु सईत्य
६१, महात्मा गान्धी रोड
कोलकाता-१

आधुनिक पुस्तक प्रकाशन
३८वि, सीताराम घोष स्ट्रीट
कोलकाता-१

श्रीश्यामापद राना, सागर, २४ परगना कर्तृक प्रकाशित एवं अन्नपूर्णा प्रिण्टिं वर्कस्, कोलकाता-१ द्वारा मुद्रित।

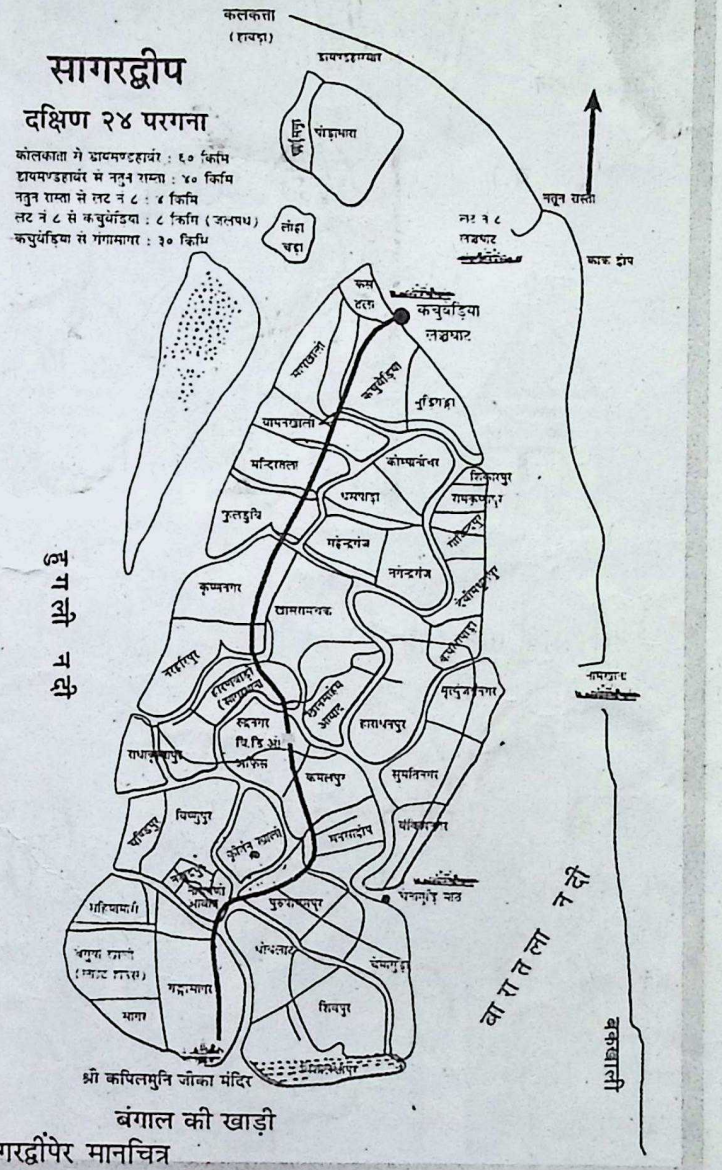
सागरद्वीप
दक्षिण २४ परगना
कोलकाता से डायमण्डहार्बर : ६० किमि
डायमण्डहार्बर से नतुन रास्ता : ४० किमि
नतुन रास्ता से लट नं ८ : ४ किमि
लट नं ८ से कचुबेंडिया : ८ किमि (जलपथ)
कचुबेंडिया से गंगासागर : ३० किमि
कलकत्ता
(हावड़ा)
डायमण्डहारबार
झड़खाली
पाड़ाभाड़ा
लोहा चड़ा
नतून रास्ता
लट ३८
लटघाट
ऑफ शोर
कचुबेड़िया
लटघाट
कमल हलदार
चाषाखाली
कचुबेड़िया
पुटिखाली
पापनखाली
मन्दिरतला
कोम्पानीबाग
लिकारपुर
रामकृष्णपुर
धमखाड़ा
कुलदुपि
गंगेन्द्रगंज
नगेन्द्रगंज
कृष्णनगर
रामगोपालपुर
कचुबेड़िया
गोपालपुर
गोपीनाथपुर
तिलखाली (रामगंज)
पुण्डरीकाक्षपुर
हदिगा
पि.डि.ओ. ऑफिस
हरिणभांगा
हरिणभांगा आयाद
हरिणभांगा
कमलपुर
सुमतिनगर
चण्डीपुर
विष्णुपुर
मदनमोहन
चांदमारी
भोगीपाखी
पुरुषोत्तमपुर
भोगलाट
चेमगुड़ि
शिवपुर
गङ्गासागर
मागर
श्री कपिलमुनि जीका मंदिर
बंगाल की खाड़ी
सागरद्वीपेर मानचित्र
गंगासागर
बकखाली

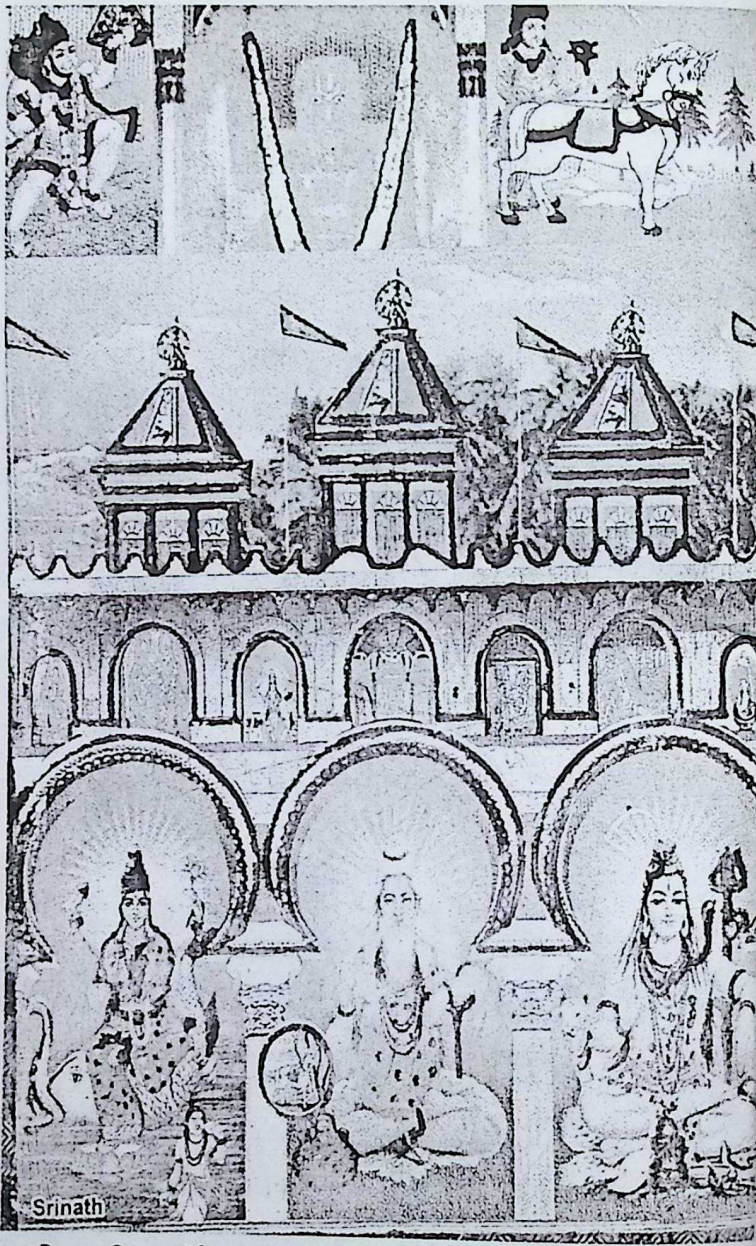

कपिलामुनिकामूर्तिवनया मन्दिर

।। श्री कपिलमुनि देवाय नमः ।।

गंगासागर का महात्व

सर्व तीर्थेषु यत् पुण्टम् सर्वदानेषु यत् भवेत्
लभते पुरुषः सर्वेम् स्नात्वा सागर संगेम।

बंगाल के सुदूर दक्षिणी छोर पर विश्वविख्यात सुन्दर बन है। सागर द्वीप सी सुन्दर बन का एक महत्वपूर्ण भाग है। यह द्वीप 30 किलोमीटर लम्बा ौर औसत 10-12 किलोमीटर चौड़ा है। यह द्वीप एक अत्यंत प्राचीन द्वीप । यह द्वीप लगभग पाँच हजार वर्ष पुराना है। पुरातत्ववेत्ताओं कहना है कि ाज से लगभग 12,100 वर्ष पहले आज का कोलकाता विशाल समुद्र के र्भ में था। ऐसा अनुमान है, समुद्र दक्षिण की ओर धीरे-धीरे बहता गया और लकाता दक्षिण 24- परगना धीरे-धीरे ऊपर आये सागर द्वीप उसी प्रक्रिया एक अंग है। आदिकाल से सागर द्वीप पौराणिक तथ्यों से परिपूर्ण रहा है।

सागरद्वीप के दक्षिण में विशाल जलनिधि किल्लोंल करते रहतें है। रूपह
बालु के कणो पर सुन्दर, सुविख्यात और प्राचीन महामुनि कपिल का मन्
अबस्थित है। इस मन्दिर के गर्भगृह में विशाल सिन्दुर राग रंजित महाम्
कपिल की मुर्ति स्थापित है। उनके बाये हाथ में कमण्डल है। जो गंगा
प्रतीक है। दाये हाथ में जपमाला है। जों मोक्ष के लिए कैबल्य का प्रतीक
मस्तक पर पंचनाग छाया किये है। पाताल लोक के ये नाग शोषनाग
प्रतीक है।

महामुनि कपिल के ठीक दायीओंर भगीरथ को गोद में लिए
पतितपावनी चतुर्भुजा गंगा की प्रतिमा स्थापित है, तथा बायी ओर राजा स
की प्रतिमा विराजमान है। महामुनि कपिल के पास ही एक सुन्दर आसन
शालीग्राम विराजमान है जिसे विष्णु मानकर पूजा जाता है। मन्दिर के ठ
दायी ओर पवन पुत्र हनुमान विराजमान है। जिन्हें ग्यारवें रूद्र का स्व
माना जाता है। मन्दिर के बायी ओर बनदेवी जिन्हें स्थानीय लोग विशाल
के रूप मे पुजते है। उनकी मूर्ति स्थापित है। साथ ही इन्द्र यज्ञाश्व के स
विराजमान है।

मन्दिर के करीब अनेक आश्रम भी स्थापित हुए है। जिनमें साख्ययोगाच
श्रीमत् स्वामी कपिलानन्द आश्रम, साधक श्रीश्री सीताराम ओम्कारन
आश्रम, नागा संन्यासी पंचमगिरि द्वारा स्थापित देवाधिदेव महा
चिंताहरणेश्वर मन्दिर, शिवशक्ति महानिर्वाण महाराज द्वारा स्थापित श्री
रांध, मानव सेवा समिति (हावड़ा), काली मन्दिर, रामकृष्ण मिशन आश्र
साख्ययोग आश्रम, लोकनाथ मिशन, विश्व हिन्दु परिषद का गंगा सा
आश्रम तथा भारत सेवाश्रम संघ का विशाल आश्रम सह यात्री निवास है

इसके अतिरिक्त, युथहोस्टल विभिन्न सरकारी बंगलो, कलकता ब
व्यवसायी सेवा समिति और श्री कपिलमुनि चैरिटेवुल टस्ट्र का यात्री निव
गंगासागर भवन भी उल्लेखनीय है।

प्रति वर्ष संक्रान्ति के अवसर पर विराट मेला लगता है। मेले
आयोजन पश्चिमबंग सरकार की देखरेख में होता है। पौष संक्रान्ति के पा

गर्व पर गंगासागर गंगा ओर सागर का ही संगम नहीं होता, बल्कि यहाँ समुचे भारतीय संस्कृति, अस्मिता और चिन्तन का संगम होता है। मेला के पावन पर्व पर लाखों की संख्या मे नर-नारी अबाल-बृद्ध सभी उपस्थित होकर मकर स्नांन का पूण्य लाभ अर्जन करते है। वर्ष भर जो साथ निर्जन पड़ा रहता है वह भूमि महामेला मे परिणत हो जाता है।

गंगा का मर्त्यावतरण

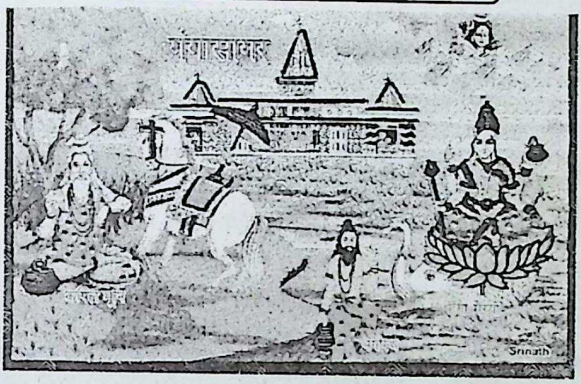

सर्वत्र पावनी गंगा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा
गंगा द्वारे प्रयागे च गंगासागर संगमे

भारतीय जनमानस के लिए गंगा एक सामान्य नदी ही नदीं, बल्कि यों कहें भारत की आत्मा है। गंगा भारतीय संस्कृति और सभ्यता की साक्षी रही है। भूगोल की एक सामान्य नदी, भारत की अस्मिता को समेटे हुए है।

महाभारत, रामायण पुराण ही नहीं अपितु विश्व सभ्यता के प्राचीनतम् ग्रन्थ वेद मे भी गंगा का उल्लेख गंगा की अपरिसीम महत्व को दर्शाता है। ऋगवेद के एक श्लोक मे यमुना सरस्वती, असिवनी शुतुद्रि मरुतबृधा, सुषोमा, आर्जिकीया, शुतुद्रि आदि नदियों के साथ गंगा का उल्लेख गंगा की प्रचीनता का प्रमाण है : —

इमं मे गंगे यमुने सरस्वती शुतुद्रि।
स्तोमं सचता परुपत्।।
आसिकन्या मरुत्बृधे वितस्तयार्जिकीये।
धृनुह्या सुषोमया।।

गंगा के मृत्युलोक मं अवतरण सम्बन्धि अनेक पौराणिक आख्यान पुराणो में मिलते जो परस्पर विरोधभास लिए हुए है। ब्रम्हबैर्वत पुराण के अनुसार गंगा, लक्षमी और सरस्वती तो विष्णु पत्निया है। आपसी कलह और बैमन्स्य के चलते ये तीनो मृत्युलोक मे नदी के रूप में चली आयी जो मृत्युलोक वासियो के लिए वरदान साबित हुई। ये तीनो नदियाँ-गंगा, पद्मा और सरस्वती के सलिल से भारतभूम धन-धान्य परिपूर्ण हुआ।

गंगा के उत्पत्ति के विषय मे एक और लोकप्रिय कहानी सुनने में आता है कि महर्षि नारद को अपने सगीतज्ञान पर वहुत अहंकार था। वे सोचते थे कि, उनके जैसा कोई संगीतज्ञ नही है। इस अहंकार के चलते वे उट-पटांग ढंग से संगीताभ्यास करते जिसके चलते राग-रागिनीयां विकलांग होती गयी। इधर नारद का अमने अहंकर के चलते राग-रागिनियों की दशा का ख्याल ही न रहा। सम्पूर्ण संगीत शास्त्र विकृत हो चला। अन्त में राग-रागिनियो ने अपने दु:ख का कारण नारद मुनि को बताया। महर्षि नारद अहंकार के कारण अपनी भूल को पकड़ नही पा रहे थे। यह ठीक हुआ कि यदि देवाधिदेव महादेव संगीताभ्यास करे तो राग-रागिनियां सामान्य हो सकेगी।

यह कथा यह दर्शता है कि व्यक्ति को सामान्य ज्ञान के मोह में अहंकारी नही होना चाहिए, बल्कि ज्ञान प्राप्ति के लिए सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए। वैसे भी संगीत को नादब्रह्म कहा गया है। संगीत साधना हो या कुछ ओर सामान्य अहंकार के चलते देवर्षि नारद जैसा साधक का-भी पतन हुआ। अत: अहंकार-से सदैव परहेज करना चाहिए।

इधर महादेव देवसभा में राग-रागिनियों के कल्यार्थ गा रहे है। पर महादेव के इस संगीत के रस-गांभीर्य को समझने की क्षमता भला किसमे है? विष्णु कुछ हद तक हृदयंगम कर रहें थे। पुराणो में ऐसा वर्णन है। कि शंकर

की संगीत लहरी से विष्णु का अंगुठा द्रवीभूत हो गया, जिससे सम्पूर्ण देवलोक प्लावित हो गया। ब्रह्मा ने इस द्रवीभूत विष्णु सत्ता को अति सावधानी के साथ, अपने कमण्डल में भरकर रखा जिसे, भगीरथ अपनी अकांत तपस्या के बलपर सगर पुत्रो के कल्यार्थ लाये। विष्णुपद से विगलित होने, के कारण गंगा का एक नाम विष्णुपदी भी है।

श्रीमद् भगवत के अनुसार अयोध्या में इक्ष्मकुवंशीय राजा सगर राज्य किया करते थे। वे बड़े ही दयालु धर्मात्मा व प्रजारक्षक थे। सगर का शाब्दिक अर्थ है बिष के साथ जब हैहय तालजंध ने सगर के पिता वाहु को संग्राम मे परास्त किया तो वे राज्यच्युत हो अग्नि और्व ऋषि के आश्रम चले गये। उसी दौरान किसी शास्त्रु ने बाहु की भार्या को बिष खिला दिया। उस समय सगर मातृगर्भ में थे। ऋषि और्व ने अपने प्रयास से वाहु-भार्या को बचा लिए, और सगर का जन्म हुआ। गरल या बिष के साथ इनका जन्म हुआ, इस लिए ये स +गर=सगर कहलाये। सगर के पिता वाहु तो ऋषि अग्नि और्व के आश्रम में ही स्वर्गत हुए। सगर बड़े होकर अपने बाहुवल और पराक्रम के वलपर, अपना खोया राज्य प्राप्त किया। सगर ने हैयों को जीत कर अपने पिता वाहु की पराजय का वदला लिया। उसी समय ऋषि अग्निऔर्वजो हैहयों के परम्परागत शत्रु थे, सगर को भारी सहायता दी। सगर ने समुचे मध्यभारत को जीत कर अपना महासाम्राज्य स्थापित किया।

महाराजा सगर वाहुबली और पराक्रमी के साथ धार्मिक प्रकृति के व्यक्ति थे! वे ऋषि-महर्षियों का सदैव सम्मान किया करते थे। एक बार राजा सगर बशिष्ट मुनि के सुझाब पर महासाम्राय स्थापिनत करने के बाद अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया। प्राचीन काल के सभी यज्ञो में अश्वमेध और राजमुय यज्ञ ही प्रधान थे। भारत के श्रेष्य पराक्रमशाली सम्राट अश्वमेध यज्ञ का आयोजन करते थे। इस यज्ञ मे ९९ यज्ञ सम्पन्न होने पर एक अति मुलक्षण घोड़े पर जयपत्र बाँध कर छोड़ दिया जाता था। जयपत्र पर लिखा होता अश्व जिस स्थान व राज्य से होकर गुजरे वह राज्य यज्ञकर्ता राजा के अधीन माना जायेगा जो जो राजा या क्षेत्रप अधीनता स्वीकार नही करते वे अश्व को

रोक कर युद्ध करते। अश्व के साथ उसकी देखरेख के लिए सहस्त्रों सैनिक भी साथ चलते। एक वर्ष बाद जब अश्व वापस राज्य में आता तो शास्त्रानुसार युपवद्ध कर अश्व की बलि दी जाती। अश्व का मांस खण्ड यज्ञ में आहुति स्वरूप दी जाती।

महाराज सगर यज्ञाश्व की सुरक्षा के लिए अपने साठ सहस्त्र सैनिको का नियोग किया था। प्रतापशाली सैनिक महासामारोह के साथ अश्व को लेकर भारत भ्रमण करते रहे। इधर सगर राजा के बल-पराक्रम तथा अश्वमेध यज्ञ सम्पूर्ण होते देख देवराज इन्द्र को शंका हुई, शंकालु इन्द्र यह सोचने लगे कि अश्वमेध यज्ञ सफल होने के बाद यज्ञकर्ता को स्वर्गलोक का-भी सजत्व प्राप्त हो जाता है। इन्द्र ने दिग्विजयी अश्व को अपने मायाजाल के बुते पर चुराकर पाताल लोक में तपस्या रत महामुनि कपिल के आश्रम में छिपा दिया। ऐसा माना जाता है, कि पृथ्वी को धारण करने में शेषनाग के साथ महामुनि कपिल का भी विशेष योगदान है। इन्द्र ने जब अश्व को लाकर छुपाया उस समय मुनि एकान्त साधना में लीन थे। अत: वे अश्व के विषय में सर्वथा अनभिज्ञ ही रहे।

इधर एक वर्ष पुरा होने को हुआ। यज्ञाश्व के साथ साठ हजार पुत्रों का प्रत्यावर्तन ना होते देख ''चक्रवर्ती'' सगर चिन्तित हो उठे। सगर की दो चत्नियाँ थी, एक का नाम वैदभी तथा दुसरी शैव्या। वैदभी के गर्भ से एक मात्रपुत्र असमञ्जस हुए। इनका जैसा नाम था वैसा ही गुण, ये बड़े प्रजापीड़क थे। धर्मिक, सहिष्णु और उदार सगर के लिए असमञ्जस का व्यवहार कष्टकारक था। सगर ने उसे व्याग दिया। किन्तु असमञ्जस के औरस से प्रबल प्रराक्रमी अंशुमान का जन्म हुआ। जिन्होने अश्वमेध और राजसुय यज्ञ सम्पन्न कराये और राजर्षि की उपाधि प्राप्त की। शैव्या यासुमति के गर्भ से साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए जो सभी एक से बढ़कर एक वीर और पराक्रमी हुए। जिसके बलपर ल्सगर ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की। राजा सगर का आदेश पाकर उनके साठ सहस्त्र पुत्र (सैनिक) यज्ञाश्व को खोजने निकल पड़े। उन्होने सम्पूर्ण पृथ्वी एक कर डाली, पर कही पर यज्ञाश्व का पता न

चला। असफल हो वे पुनः अयोध्या लौट आये। राजा का पुनः आदेश हुआ। पाताल लोक में खोजकर देखो। पाताल लोक में खोजते-खोजते सहसा सगर पुत्रो को मानों अमृत कलश मिल गया हो। उन्होनें देखा निविड़, शांत और पवित्र स्थान पर एक दिव्यादर्शी साधु अपनी साधना में लीन है। संसारिक सगर पुत्र को ऐसा आभास हुआ, यज्ञाश्व चोर युद्ध करने के भय से समाधि लगाने का ढोंग कर रहा है। भला उन्हे क्या पता था कि यह साधु साक्षात् वासुदेव है। सगर पुत्रो ने मुनि को अश्व चोर समझ कर नानाबिध अत्याचार किये। मुनि का कोई उत्तर ना पा वे क्रोधित हुए। सगर पुत्रो ने महामुनि की समाधि भंग की। हुआ वही जो अभिष्य था। महामुनि की क्रोधग्नि ने, साठ सहस्त्र सगर पुत्रो को जलाकर भस्म कर दिया।

इधर शोक संतप्त यज्ञकर्ता सगर यज्ञाश्व व अपने साठ हजार पुत्रो को न आता देख ओर अधिक व्याकुल होने लगे। उन्होने असमञ्जस के पुत्र अंशुमान को यज्ञाश्व व साठ हजार पुत्रो के अनुसंधान का गुरु कार्य दिया। आदेश पाते ही तेजस्वी अंशुमान अपने उद्देशय की पूर्ति के लिए निकल पड़े। अंशुमान अनेक बाधाओं को पारकरते हुए, सैनिको के पदचिह्नों पर चलते-चलते अन्तः पातालपुरी पहुँचे। कपिलाश्रम पँहुचते ही अंशुमान साधना रत कपिल के सामने करवद्ध खड़े रहे। महामुनि का ध्यान भंग होने पर अपना परिचय और आने का उद्देश्य निवेदंन किया। अंशुमान के ओज और विनय से ऋषि कपिल प्रभावित हुए और उन्होंने सारी घटना अंशुमान को बता-दिया। यह सब सुनते ही अंशुमान का हृदय व्यथित हो उठा। अश्रुपूर्ण नेत्रो से अंशुमान ने ऋषि को प्रणाम किया और अपने बन्धुवान्धओं की आत्मा के मुक्ति के लिए उपाय पूछा। ऋषि ने कहा "भस्मराशि मे परिणत साठ हजार पुत्रों की आत्मा के मुक्ति के लिए त्रिलोक तारिणी, त्रिपथगामिनीं गंगा का अवतरण आवश्यक है। गंगा की पुण्य वारिधारा ही सगर पुत्रों को मुक्ति के द्वार तक पहुँचा सकती है।"

राजा सगर की भार्या सुमति या शैव्या गरुण की सगी बहन थी। इस प्रकार पक्षिराज गरुर ने भी अपने भोजो के कल्पणार्थ पतितपावनी गंगा के

अवतरण की बात ही कही।

अंशुमान को यज्ञाश्व के साथ अयोध्या पहुँचनेपर राजा सगर ने अपना यज्ञ पुरा किया और अपने जीवन का अवशिष्ट समय गंगा अवतरण के प्रयास मे लगा दिया। राजा सगर के बाद उनके पौत्र अंशुमान सन्नासीन हुए। इसके बाद अंशुमान के पुत्र दिखाप भी अपनी सारी ऊर्जा गंगा को सर्त्यलोक मे अवतरण कराने के सयास में सगर दिखाय। अर्थात तीन पुरुषो का कुल समय, गंगा अनयन में ही शेष हो गया। पर बे गंगा को मत्य/लोक में लाने में सफल नही हो सके। राजा दिलीप नि:संतान धे। उनकी दो रानियाँ थी। वंश लोप के भय से दोनो रानियाँ ऋषि और्व के यहाँ शरणापन्न हुई। ऋषि के आदेश से दोनो रानियो ने आपस में संयोग किया जिसके फलस्वरूप एक रानी गर्भवती हुइ। प्रसव के बाद एक मांसपिण्ड का जन्म हुआ जिसका कोई निश्चित आकार न था। कातर रानी पुन: ऋषि अग्नि और्व के बहाँ शरणापन्न हुई। ऋषि के आदेश से मांसपिण्ड को राजपथ पर रखवा दिया गया।

इधर अष्टब्रक मुनि स्नान के बाद अपने आश्रम को लौट रहे थे। अपने समने मांस का पिण्ड फड़कता देखकर क्रुद्ध हुए, उन्होनें सोचा मांसपिण्ड उन्हें चिढ़ा रहा है। मुनि ने क्रोध में आकर कहा, यदि तुम्हारा आचरण स्वभाव सिद्ध हो, तो तुम सर्वांगसुन्दर होओ और यदि सेरा उपहास कर रहे हो तो मृत्यु को प्राप्त हो। मांसपिण्ड ऋषि के वचन सुनते ही सर्वांगसुन्दर युवक में वदल गया। वह युवक दोनो रानियो के भग संयोग से जन्म लिया था अत: उनका नाम हुआ ''भगीरत''। भगीरथ अपनी माता द्वारा पूर्वजो की कहानी सुनने का बाद वे स्वयं उनकी मुक्ति के लिए सोच में पड़ गये। एक तरफ संसारिक बन्धन तथा दुसरी ओर पूर्वजों की मुक्ति का भार किसे चुने? अन्त: उन्होने अपने पूर्वजो को मुक्ति दिलाना ही श्रेष्यकर समझा। और राज्य का भार मंत्रियो पर छोड़ वंश-उद्धार के महत् कार्य में चलपड़े।

गृहत्यागी होकर हिमायल क्षेत्र में जाकर भगीरथ इन्द्रकी स्तुति की। इन्द्र ने गंगा अवतरण में अपनी असमर्थता प्रकट की तथा देवाधिदेव की स्तुति का सुझाव दिया। सौम्य भगीरथ देवाधिदेव को प्रसन्न वर उनकी आज्ञा-से सृष्टिकर्ता

की अराधना की। भगीरथ की कठिन तपस्या से प्रजापति प्रसन्न हुए। प्रजापति ने विष्णु की अराधना का सुझाव दिया। इस प्रकार ब्रह्मा-विष्णु और महेश तीनों हो भगीरथ के प्रति संतुष्ट हुए। अन्तः भगीरथ गंगा को संतुष्ट कर मर्त्यलोक मे अवतरर की सम्मति भॉग ली। विष्णु ने अपना शंख भगीरथ को देकर कहा शंखध्वनि गंगा को पथ निर्देश करेगी। गंगा शंखध्वनि का अनुसरण करेगी। इस प्रकार शंख लेकर आगे-आगे भगीरथ चले और उनके पीछे-पीछे पतितपावनी, त्रिपथगामिनी, शुद्ध सलिला गंगा। ब्राह्मलोक से अवतरण के समय, गंगा साठ हजार योजन विस्तृत सुमेरु पर्वत के मध्य आवद्ध हो गयी। इस समय इन्द्र के अपना गज ऐरावत भगीरथ को प्रदान किया। अहंकारी ''गजराज'', ऐरावत ने सुमेरु को चार भागों में विभक्त किया-जिससे गंगा की चार धराए प्रवाहित हुई। ये चारो धराये बसु, भद्रा, श्वेता और मन्दाकिनी के नाम से जानी जाती है। बसु-नाम की गंगा पूर्व सागर, भद्रा-नाम की गंगा उत्तर सागर, श्वेता-नाम की गंगा पश्चिम सागर ओर मन्दाकिनी-नाम की गंगा अलकनन्दा के नाम से मर्त्यलोक में जानी जाती है।

सुमेरु पर्वत से निकल कर गंगा कैलाश पर्वत होती हुई प्रबल वेग के साथ भू-पृष्ठ पर अवतरित होने लगी। उसी समय महादेव ने अपनें जटा-जाल में गंगा को धारण किया! इस प्रकार गंगा अपने अहंम् भाव के चलते वारह वर्षो तक शंकर के जटाजाल में जकड़ी रही। भगीरथ अपनी साधना के बलपर शिब को प्रसन्न करा गंगा को मुक्त कराया। शिव ने गंगा की धारा को अपनी जटा को चीर कर बिन्ध-सरोबर में उतारा। यहाँ सप्तऋषिओं ने शंखध्वनि की! गंगा सात भागों में विभक्त हो चली। मुलधारा भगीरथ के साथ चली। वह स्थान हरिद्वार के नाम से जाना जाता है। हरिद्वार के बाद गंगा की मूलधारा भगीरथ का अनुसरण करतें हुए त्रिवेणी, प्रयागराज, वाराणसी होते हुए जंहु मुनि के आश्रम पहुँची। भगीरथ की बाधाओ का यहा भी शेष न था। संध्या समय भगीरथ ने वही विश्राम करने को सोची, परन्तु विधाता ने ऐसा रचा ही कहाँ? संध्या आरती के समय जंहु मुनि के आश्रम में शंखध्वनि हुई। संख्यध्वनि का अनुसरण कर गंगा ने जंहु मुनि का आश्रम बहा लेगयी। ऋषि ने विचलित हकर अपने तेज के बलपर गंगा के एक चुल्लु में ही पान कररोथा।

भगीरथ आश्र्यय चकित हो प्रार्थना करने लगे। गंगा-मुनि के कर्ण-विवरो से अवतरित हुयी। गंगा यहाँ जन्हावी के नाम से प्रसिद्ध हुयी। कौतुहलवश जंहु मुनि की कन्या पद्मा ने भी शंखध्वनि की। पद्मा वारिधारा में परिणत हो गंगा से साथ चली मुर्शिदाबाद के धुलियान के पास भगीरथ दक्षिण मुखी हुए। गंगा की वारिधारा पद्मा का संग छोड़कर शंखध्वनि के आकर्षण से दक्षिण मुखी हुयी। पद्मा पूर्वकी और बहते हुए वर्तमान बंगलादेश को धन-धान्य से परिपूर्ण की। दक्षिण-गामिनी गंगा भगीरथ के साथ महामुनि कपिल के आश्रम तक पँहुची। ऋषि ने वारि को अपने मस्तक से लगाया और कहा हे माता। पतितपावनी कलिकलुष-नाशिनी गंगे। पतितों के उद्धार के लिए। ही तुम्हार मर्त्यपर अवतरण हुआ है। अपने कर्मदोष के कारण ही सगर के साठ हजार पुत्र क्रोधग्नि का सीकार हुए है। तुम अपने पारश रूपी पवित्र जल से उन्हे मुक्ति प्रदान करो माँ। वारि धारा आगे बढ़ी। भष्मराशि प्लावित हुआ। भगीरथ का कर्मयज्ञ सम्पूर्ण हुआ। धन्य हुये ''भारतभूमि''। वारिधारा सागर में समाहित हुयी। गंगा और सागर का यह पुण्य मिलन ''गंगासागर'' के नाम से सुप्रसिद्ध हुआ। आज भी महामुनि कपिल की प्रतिमा सागर की फेनिल-नील-जलराशि उस विरल मिलन की स्मृति को संजोये हुए है। आज गंगासागर एक प्रत्यन्त ग्राम नहीं, भारतीय संस्कृति का संगम स्थल है।

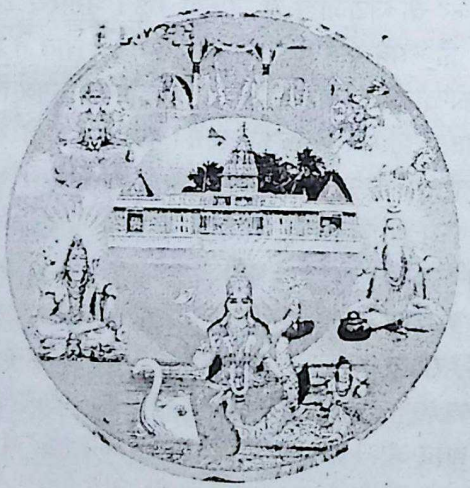

महामुनि कपिल

सांखयोग का प्रणेता माना जाता है। भागवत् के अनुसार प्रजापति कर्दम के औरस से मनुकन्या देवहुति के गर्भ से इनका जन्म, बिन्दु सरोवर आश्रम में हुआ था जो गुजरात में स्थित है। ऐसा माना जाता है कि ईश्वर के सत्व अंश से परब्रह्म ने ''कपिल'' के रूप मे जन्म लिया। ताकि वह सांखयोग का प्रचार कर सके। साख्ययोज्ञाचार्य कपिल ने अपनी माता देवहुति को सिद्धपुर में साख्ययोग की शिक्षा दी थी। यह स्थान गुजरात के पाटन के नजदीक है। भगवान कपिल स्वायाम्भू ज्ञानी थे। साख्यवादियों के अनुसार भगवान कपिल ही विश्व के आदि उपदेष्टा, आदि विद्धान और विचारक थे। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कपिल मुनि को सिद्धि वाणों में प्रधान कहा है। सिद्धानाम् कपिलो मुनिः।' (गीता १०/६)।

।। श्री कपिलदेवजी की स्तुति।।

चौपाई

जय जय विष्णु कपिलेश्वर, जय जय सांख्य शास्त्र के शेखर।
जय जय ब्रह्मरूप नारायण, जय सुरसन्त दुःखी हारायण।।
जय श्री विष्णु विष्णु योगीश, तापसरूप चराचर ईशा।
जीत काम जय ज्ञान धुरन्धर, मायातीत जितेन्द्रिय भुनिबर।।
जय श्री देवहूति कर्दम सुत, जय जय देव साधुनि गणहित।
भव कानन दावग्नि स्वरूपा, जय नारायण जय नर रूपा।।
जय प्रभु लोक अनुग्रह कारक, सकल सिद्धि दायक भयहारक।।
जय श्री कपिलदेव परमेश्वर हो प्रसन्न कृपालु भुवनेश्वर।
अबकरि कृपा विलोकहु स्वामी, वन्दि कमलपद कोटि नमामि।।
दोहा - मुनि विनती सुरगणनकी, भे प्रसन्न कपिलेश।
कह्यो शीघ्र दुक छूटि है, धीरज धरहु सुरेश।।

दोहा

गंग महातम पढ़त ही छूटि जात सब पाप।
श्री ब्रह्मा निज मुख कह्यो, गंगा महातम आप।।
कनखल हरिद्वार ब्रह्मावत, प्रयागराज काशी बहुतायत।
भे प्रसिद्ध तीरथ जगमाही, तारत सब जग लोगन काही।।
सिन्ध समीप गहे महारानी, ह्वै सहस्र धारा समियानी।
साठिहु सहस्र तरे तेहिकाला, निकासि नर्क से भये निराला।।
शाप मुक्त नृप पुत्रन जानी, भाख्यो धर्मराज मृदु बानी।
सुनहु सकल नृप सगर कुमारा, मम अर्चना करहु स्वीकारा।।
तुम निज दोष बहुत दुख पायो, दारुण आक गाहि तप तार्या।
कुल सबुत भागीरथ भयऊ, तब गति हेतु कठिन तप कियऊ।।
सोई पुण्य भ्रभाव कुमार, स्वर्ग द्वार अब खुला तुम्हरा।

जाठ वत्स अब हरिपुर माहो सुखद आनन्द तहे तुम्हें सदाही।।
आए विष्णु दूत तेहि अवसर सबहि बिमान चढ़ाये सादर।
सूर्यवंश सहँ जो कोउ रहऊ सोऊ बैकुण्ठ तिनहि सङ्ग चलेऊ।।
धन्य धन्य सब देवन कहेऊ, भागीरथ सम कोउ न भयऊ।
सूर्ववंश महँ जो कोई रहेऊ, सब कहँ आज सुगति तुम दयऊ।।
यहि विधि सगर पुत्र गण जेते,, सुख युत वसे स्वर्ग महँ तेते।
यहा कपिल मुनि आश्रम याही, हाथ जोड़ भागीरथ कहही।।
जय जय जय सुरसरि महरानी विपत उधारणि जन सुखदानी।
आज मातु मोहि अति सुख भयऊ, जो मम पित्रनगति तुमदयऊ
देबन सहित विधाता आये, भागीरथ लखि पद सिर नाये।

भजन

सगर नहाइ अन्त बन जाई, मुझे सागर का रास्ता बता दो मुनी।।
अब तो कहा पर तेरी लगी है धूनी, अब तो कैसे दरस हम पाऊं मुनी।।
मुझे सागर का रास्ता बता दो मुनी।।

शौर - तीर्थ बना है निन्द में दर्शन के वास्ते।
सब लोग आते हैं यहां दर्शन के वास्ते।।
गंगा व यमुना बीच दर्श दिये मुनी।।
अब तो माया है अपरम्पार मुनी।। मु०
सदानन्द कहे कैसे जाऊँ मुनी।।
तेरे चरणों मे शीश नवाऊँ मुनी। मु०।।

श्री गंगा महात्म्य सवैया

सादर गंगा को नाम लिये औ पान किये शत पातक नाशै।
ध्यान धरे अध दुई शत जन्म के नाशत ह ९ वेद प्रकाशै।।
पान किये विनसे अध जन्म के अन्य समय यम त्रास विनाशै।
बद्रि सुमन्जन जन्म सहस्र के पाप कटे और द्दिये मुद भाषै।।
तीरथ जेते अहै जग में अध मंजनि गंगा सर्वाधिक ह्वैहैं।

देवसरी तट धर्म औ कर्म के बोस गुणा अधकी फल ह्वैहैं।।
पाथल काशी प्रयाग सुयोग सहस्र गुणा फल प्राप्त ह्वैहैं।
अन्त समय एक बृन्दहुँ जो मुखमाहिं परीं सो कृतारथ ह्वैहैं।।
विष्णुपदी जल अन्त समय वश देह परे अधमो गति पैहैं।
आज से भागीरथी कहवावहि गंग प्रभाव नर सो सब गइहैं।।
भक्ति समेत जो सेवहि नित्य तिन्हें कछु दुर्लभ ना जग ह्वैहैं।
जो यह गाय पढ़े ओ सुने नित बद्रि सोउ सुरलोकहिं जैहै।।
कहे सदानन्द सप्रेम वचन यह धन्य मनुष्य जो सागर नहैहैं।

सवैया

लहरे छहरै महि मण्डल में, अघ हर मन मोद भरे हैं।
किन्नर यक्ष मुनि सुर सिद्धहिं, सादर भज्जन पान करै है।
कोटिन पापी सुरापी महा, श्रीगंगा कृपा प्रति द्योत तरै है।
बद्रि तब पद पंकज जो, बसुधा में सुधा सी सदा फहरैहैं।।

।। इति श्री गंगासागर महात्म्य सम्पूर्णम्।।

।। श्री गंगासागर संगम स्नान विधि।।

ऊँ विष्णु ओम् तत्सत अमुक मासे, अमुक पक्षे अमुक तिथौ अमुक गोत्रोत्पन्न
अमुक नामहं श्री गंगासागर संगमें स्नान-फल प्राप्त्यर्थ करिष्ये।

यह संकल्प कर स्नान विधि से स्नान कर फिर हाथ जोड़कर नीचे लिखे हु
मन्त्र को पढ़े।

त्वं देव सरितामार्थ त्वं देवी सरिता वर उभयो संगमें स्नात्वा मुचामा दुरित निवं

।। तर्पण विधि।।

ब्रह्मदयो सुरासर्वेलषया सौनकादय:
आगच्छन्तु पितर: सर्वे मम तर्पण: वेतवे-

ब्रह्मा तृप्यतां, विष्णु, तृप्यतां, रुद्र तृप्यतां, इन्द्र तृप्यतां, वरुणं तृप्यतां, सप्तऋषि

तृप्यतां, पितरः तृप्यतां, पिता पितामह प्रपितामह तृप्यतां, माता पिता महा तृप्यतां, प्रपितामही तृप्यतां, मातामह प्रमातामह, वृद्धः प्रमातामह तृप्यतां, माताम्ही प्रमातामही तृप्यतां, इत्यादि सर्व पितरः तृप्यतां।

गंगा स्नान के आगे इस मन्त्र को पढ़कर गंगाजी का स्नान करना चाहिये।

ऊँ विष्णु, पादाब्ज सम्भवे गंग त्रिपथगामिनी।
धर्म द्रवति विख्याते पापमेहर जान्हवी।।
पापोह पाप कर्माह, पापात्मा पाप सम्भव।
त्राहि माम् पुण्डरीकाक्ष सर्व पाप हरोभव।

।। श्री कपिलदेव जी की स्तुति ।।

धनि धनि कपिलदेव महाराज जगको ज्ञान सिखाने वाले।
करके साँख्य शास्त्र उद्धार, योगमार्ग का किया प्रचार।
प्रकृति पुरुष के भेद बताने, वाले।। धनि०
जब जब होत धर्म की हानी, बाढ़हि असुर अधम अभिमानी।
तब तब लेत बिबिध अवतार, करिके दुष्टन का संहार।
जगत के त्रास मिटाने वाले।। धनि०
कपिल होइके ज्ञान प्रचारे, व्यास होइके वेद विचारे।
नरहरि हो प्रहलाद उबारे, कूर्म होई मंद्राचल धारे।
होइ बराह ब्रह्माण्ड उधारे, वामन है बलि द्वारे ठाढ़े।
राम होईके रावण मारे, कृष्ण होइके कंस पछाड़े।
करिके कर्मयोग उपदेश, अर्जुन का मोह मिटाने वाले।
धनि धनि कपिलदेव महाराज, जगको ज्ञान सिखाने वाले।
सदानन्द कहे पुकार चरण में शीश झुकाने वाले।। धनि०।।

।। गंगा माहात्य एवं गंगासागर तीर्थ की कथा ।।

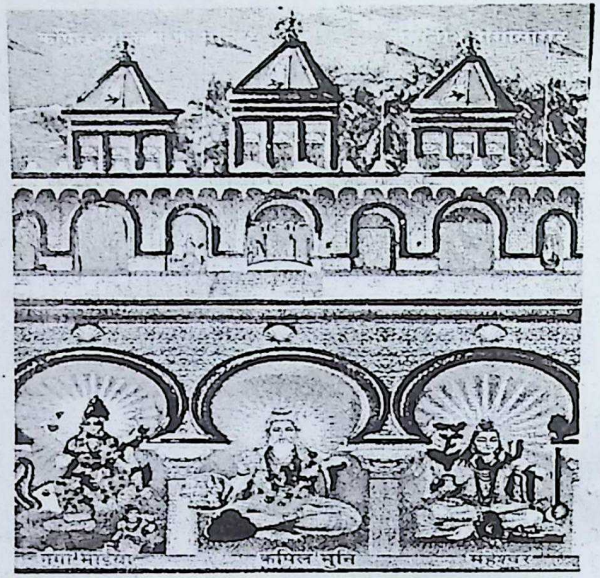

(ओ माँ) पतितोद्धारिणि गंगे,
श्यामविटपघन तटविप्लाविनि, धूसर तरंगभंगे।
कितने नग-नगरी तीर्थ रहे तव चरणयुग् चुम्बित मांहि।
कितने नर-नारी धन्य हुए माँ तव सलिले अवगाहि।
बहती हो जननी। इस भारतवर्ष में कितने युग-युग वाहि,
करती हो सुश्यामल्ल कितने मरूप्रान्तर शीतल पुण्यतरंगों में।
नारद-कीर्तन-पुलकित-माधव-विगलित-करुणा क्षरिया,
ब्रह्मकमण्डलु उच्छलि धूर्जटि-जटिल-जटा पर झरिया,
अम्बर से समशत धारा ज्योतिःप्रपात तिमिरे-नमि,
धरा में हिमाचल मूले मिलित सागर संगे।
परिहरि भवसुखदुःख जब माँ, (मैं) शायित अन्तिम शयने,
(तब) बरसाकर श्रवण ममं तव जलकलरव वरीय सुप्ति मम नयने।

(ओ माँ) बरसो शांति मम शंकित प्राणे, बरसो अमृत मम अंगे,
मां भागीरथि, जाह्नवि, सुरध्वनि, कलकल्लोलिनि गंगे।

आहा। क्या मधुरश्रावी! संगीतलहरी है। कितना सुन्दर प्राण देनेवाला भजन है। द्विजेन्द्रलाल राय का यह स्तुतिगीत गा रहे थे एक किन्नरकंठी, त्यागव्रती आश्रम-सेवक, और सुन रहे थे एक महायोग-सिद्ध, शिवावतारी युगाचार्य। समय अंग्रेजी १६२६ साल और स्थान था काशी का गंगापुलिन-हरिश्चन्द्र घाट एवं असि घाट के मध्य का कोई निर्जन-नीरव किनारा। श्रोता बैठे थे उत्तर वाहिनो गंगा के तीर पर उत्तर की ओर मुख किये हुए, और गायक बैठे थे उन्ही के समीप दक्षिण-पूर्व की ओर मुख किये हुए। गीत थम गया, परन्तु उनकी स्वरलहरी गंगा के कलकल- छलछल जल में, आकाश में, वातास में गूँज-सी रही है। देवनदी की तरंगों को संग-संग, उसके विविध रंगों में रंगी हुई वह स्वर-लहरी मानो नर्तन करती हुई आगे बढ़ रही है। श्रोता मौन, गंभीर, भावमग्न हो अचल बैठे हैं, मानो सत्य ही शंकर-तपस्यारत, ध्यानमग्न शंकर हों। पुण्यतोया जाह्नवी के तट पर इस धूसर सन्ध्या में किस अतीत, किस अनागत, किस अचेतन की कौन-सी मंगल भावना का उद्वेलन हो रहा है, जो इस महापुरूष के जीव-करुणा-कातर हृदय को उद्वेलित कर रहा है? कौन उस रहस्य को जान सकता है? प्रायः एक घंटा व्यतीत हो गया। फिर महायोगी की समाधि भंग हुई, परन्तु योगी तब भी भाव-विभोर थे। धीर-स्थिर कंठ से गायक भुवन से बोले-'चलो घर चलें।'

ये महापुरुष ही थे भारत सेवाश्रम संघ के प्रतिष्ठाता आचार्य "प्रणवानन्दजी" महाराज। हिन्दू तीर्थो के कालुष्य-नाश एवं तीर्थोद्धार की थी उनकी अमर कीर्ति। ग्रन्थ की भूमिका में देखा है १९२४ में उन्होंने गया तीर्थ का संस्कार किया था। १९२६ साल में देवनाथपुरा में एक कमरा किराये पर लेकर उन्होंने काशीधाम में भी आश्रम-स्थापना का प्राथमिक उद्योग किया। इसी वर्ष काशी के अन्नपूर्णा मन्दिर में अन्नकूट के उत्सव पर एवं सोनमुर के हरिहरक्षेत्र मेले में सेवाकार्य की सूचना मिलती है। १९२७ साल में हरिद्वार में गंगा-तीर पर पूर्णकुंभ मेले में उनकी शुभ उपस्थिति रही एवं

सफल सेवाव्रत का सूत्रपात हूआ। इसी क्रम में, कालान्तर में पुरी और प्रयाग धाम में भी आश्रम एवं यात्री-निवास की प्रतिष्ठा की गयी। श्री आचार्यदेव के पश्चात् संघ की और से कुरुक्षेत्र, वृन्दावन, नवद्वीप, हरिद्वार, केदारनाथ, गौरीकुण्ड एवं बंगाल के प्रसिद्ध तीर्थ गंगासागर में भी उन्ही के आदर्शानुरूप आश्रमों की स्थापना की गयी। गंगासागर में सहस्त्रों स्वयंसेवकों की सहायता से, प्रत्येक वर्ष पौष संक्रान्ति पर संघ के उद्दोग से सेवाकार्य की परिचालना की जाती है। गंगासागर बंगाल का कुंभमेला है। हिमालय से कन्याकुमारी, आसाम-त्रिपुरा से पंजाब-हरियाणा पर्यन्त समस्त भारतवर्ष से लक्ष-लक्ष गृही एवं विभिन्न संप्रदायों के सहस्र साधु-महात्मा इस मेले में आते हैं-गंगास्नान, तीर्तकृत्य आदि करते हैं।

कपिल का सांख्य-दर्शन

जीव की दुर्गति का कारण हैं – आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक पाप। भगवान कपिल ने इन त्रिविध दुःखों से मुक्ति का उपाय बतलाया है। उनके अनुसार, त्रिविध दुःखों से आत्मन्तिक निवृत्ति ही परम पुरुषार्थ हैं। सांख्य के अनुसार मूल तत्व २५ है, यथा–प्रकृति महत्, अहंकार, ग्यारह इन्द्रियाँ, पंच तन्मात्राएँ, पंच महाभूत एवं पुरुष।

सत्त्व, रज एवं तम-इन्ही तीन गुणों की साम्यावस्था को प्रकृति कहा जाता है। इस अवस्था में प्रकृति निष्क्रिय रहती है। उक्त त्रयगुशों में जब कभी ह्रास या वृद्धि होती है, तब उस वैषम्य मे प्रकृति का साम्य गंग होता है–उसमें विक्षोभ, चांचल्य, विकृति और सक्रियता आती है। प्रकृति कि विकृति से जीव और जगत की सृष्टि होती है। यह जीव और जगत अव्यक्त रूप में प्रकृति में ही स्थित या विद्यमान रहते है, इसी कारण प्रकृति का ष्क और नाम ''अव्यक्त'' है। सृष्टि आदि क्रिया में प्रकृति ही प्रधान है। वह प्रकृतरूप में यह काम करती है, इसी कारण 'प्रकृति' नाम पड़ा–''प्रकहोतीति प्रकृति''। प्रकृति का प्रथम परिणाम महत्-तत्व या बुद्धितत्त्व है। महत्-तत्त्व की विकृति या परिणाम या कार्य अहंकार

तत्त्व है। अहंकार तत्त्व के द्विविध परिणाम हैं–पंचतन्मात्रा एव बाह्य तथा अन्तरिक इन्द्रिय-वियथ। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द–यो पाँज तन्मात्राएँ हैं। इन सुक्षम पंचतन्मात्राओं से ही क्षिति, अप (जल), तेज़ (पावक), मरूत् (समीर), व्योम (आकाश)–इन पाँच स्थूल तत्वों की उत्पत्ति होती है। बाह्य इन्द्रियाँ दस हैं–चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वक्, वाक्, पाणि, पाद, पायु, एवं उपस्थ। प्रथम पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, एवं अन्तिम ५ कर्मेन्द्रियाँ। मन अन्तरेन्द्रिय है। अत: हिसाब से देखा जाता है कि प्रकृति सहित प्राकृत पदार्थ चैबीस हैं। पुरुष एक हैं। सांख्य मत के अनुसार इन पंचविंशति तत्त्वों का सम्यक् ज्ञान ही पुरुषार्थ हैं।

सांख्य मत में, जीव और जगत की सृष्टि में ईश्वर को प्रमाणरूप में नहीं माना जाता। पुरुष और प्रकृति के अविविक्त संयोग मे ही सृष्टि क्रिया निष्पन्न होती है। पुरुष ओर प्रकृति दोनों ही आनादि है। पुरुष चेतन है, प्रकृति जड़, पुरुष निष्क्रिय है, प्रकृति क्रियाशील। चेतन पुरुष के सान्निध्यवश होने के कारण ही प्रकृति भी चेतन्यमयी लगती है। पुरुष केवलमात्र भोक्ता है, कर्त्ता नहीं। परन्तु पुरुष का यह भोग औपाधिक है। पुरुष सर्वदा ही दु:खवर्जित है। दु:ख तो बुद्धि का विकार है। यह दु:खबुद्धि पुरुष में प्रतिबिम्बित मात्र होती है।

सांख्य मत का कथन है–शरीर के भेद से आत्मा और पुरुष बहु हैं। पुरुष एबं प्रकृति चतुविंशति तत्त्व से स्वतन्त्र हैं। अज्ञानतावश, न जानने के कारण ही जीव को बन्धन मे बंघना पड़ता है, दु:ख और संसार में आवागमन के चक्र में फसना पड़ता है। प्रकृति पुरुष को अपने हावभाव, छल-कौशल द्वारा बाँधकर रखती है। प्रकृति मानो नाटक की नर्तकी है–मनमोहिनी, हास्य-लास्यमयी। प्रकृति के इस हाव-भाव, लास्य-नृत्य, छल-कौशल को पुरुष जिस दिन पकड़ लेता है, उसी दिन वह मुक्त हो जाता है, अर्थात् सारे बंधन तोड़ देता है। प्रकृति से पुरुष के स्वातंत्र्य या मुक्ति को ही, मुक्ति के विवेक को ही ज्ञान कहा जाता है और सांख्य मत के अनुसार ज्ञान हि मुक्ति है –''ज्ञानन्मुक्ति''। कठोर साधना द्वारा प्रकृति-पुरुष के भोग्या-भोक्ता भाव का उच्छेद ही पुरुषार्थ या आत्मन्तिक 'दु:खनिवृत्ति' है। अर्थात् प्रकृति को तलाक देकर ही–उसके साथ सब तरह के

रंग-राग करके ही पुरुष के जीवन में मुक्ति की प्राप्ति होती है। प्रकृति से सम्पूर्ण रूप सं स्वतन्त्र होने का नाम ही पुरुष का कैवल्य है। मुक्त पुरुष को प्रकृति अपने छल-बल से रिझाने नहीं आती। जिस प्रकार सभा समाप्त हो जाने के पश्चात् नर्तकी पूर्णत: निढ़ाल हो जाती है और नाचने के लिए नहीं उठती, उसी प्रकार की स्थिति यह है। सांख्यकारो ने पुरुषार्थ की प्रामि के लिए ध्यान, धारणा, अभ्यास, वैराग्य, तपश्चरण आदि का पालन करने का आवश्यक उपदेश दिया है। सांख्य के साथ योग का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है।

मकरवाहिनी

पौराणिक भावना के अनुसार दैवी गंगा मकरवाहिनी हैं। गंगा के साथ 'मकर' वाहन की उपयुक्तता हैं। उसी समय बोध होता है, भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा था–'झपानाम् मकरक्षास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी।'' अर्थात् जलचर जीवों के मध्य मैं मकर और स्रौतस्विनियों के बीच में जाह्नवी या गंगा हुँ। गंगा दुर्वार गति लेकर पृथ्वी पर अवतीर्ण हुई तथा मकर की गति भी उल्लेखनीय भाव से द्रुत है। मक + अर (क) = मकर – मक् का अर्थ हुआ गमन करना। महावेगवती, महाशन्तिमयी विपुला, विशाला गंगा के वाहन के रूप में, मीन रूपो में शक्तिशालो, वीर्यवान मकर ही समर्थ हो सकता है। पुनश्च, मकर मानों मुमुक्षु जीव का प्रतीक है। गहरे जल के तलप्रदेश से मकर बीच-वीच में ऊपर स्थल की ओर आता है, मानो उसे प्रकाश और हवा की कामना हो, मुक्ति की कामना हो। तभी तो यह मीनवर मुक्तिविधयिनी, पापनाशिनी माँ गंगा का नित्य आश्रित है। सरिता से सागर की ओर जाना ही उसके प्राणों को कामना है।

मुक्तिकामी साधक के विचार से मकर केवलमात्र एक जलचर प्राणी नही, मकर एक तत्त्व है। गंगा भी मात्र नदी नही, एक तत्व है। मकर का आदि अक्षर 'म' है। कामधनु तत्र में मकार का परिचय दिया गया है–स्वयं परम कुण्डली, तरूणादित्य-सकाश, चतुर्वर्ग-प्रदायक, पंचदेवमय ओर पंचप्रणामय–

म-कारम् श्रृणु चार्वगी परमकुण्डली।
रुणादित्यसंकाशम् चतुर्वगप्रदायकम्।।
पंचदेवमयं वर्ण पंचप्राणमयं सदा।।

अर्थात् 'मकार' षक महाशक्ति हैं। पंचप्राणमय जीवभाव के आश्रय में यह असल में कामशक्ति है। कामदेव स्वयं मकरध्वज हैं; अर्थात् काम को इन्होने मस्तक पर रखा है। जीवदेह में भी एक जलाशय है। लिंग-भंग-लांछित इस भूमि पर ही जीव को संताप देनेवाला है दुरन्त काग। इस चिन चंचलकारी रिपु के वश में होने के कारण ही जीव तत्त्वज्ञान से पराङ् मुख रहता है। इससे मुक्ति का उपाय क्या है? कामशक्ति का परिशोधन एवं उदातीकरण ही देवतत्व का विकाश है। प्रवृत्ति का मार्ग नहीं। चाहिये परानिवृत्ति। जो ऊध्वरिता हैं, वे मनुष्य नही देवता हैं –

ऊध्वरिता भवेत् यस्य देवो न तु मानुषः।

परन्तु कामजयी होना क्या सहज है? बिना किसी विवाद के ही कहूँगा–प्रकृति के बन्धन से अगर मुक्ति पानि है: तो इस दुष्यराजेय काम पर जय पानि ही होगी। माँ गंगा तो वही निवृत्ति का मार्ग दिखाला रही है, सिखला रही हैं समझा रही हैं। कामशक्ति के प्रतिरूप मकर को रखा है, उन्होंने अपने चरणों के तले, और सर्वत्यागी, सर्वसन्यासी शिव को स्थान दिया है, अपने हृदयस्थल में। हे वेरण्य भक्तगण, हे पुण्यवान तीर्थयात्रीगण, माँ के दिव्य चरित्र से क्या इस महती शिक्षा को इस ग्रहण नही करेंगे?

पौष संक्रान्ति-माहात्म्य

सूर्य के अयन गति-यथ दो हैं–उत्तरायन एवं दक्षिणायन। विषुवत् रेखा से सुर्य के उत्तर की ओर गमन को उत्तरायन एवं दक्षिण की ओर गमन को दक्षिणायन कहते हैं। श्रावण से पौष तक छह महीने दक्षिणायन एवं माघ से आषाढ़ तक के छह मासों को उत्तरायन कहने हैं। पौष की संक्रान्ति को उत्तरायन अथवा मकर संक्रान्ति कहते हैं, क्योंकि सूर्य इस दिन मकर राशि में प्रवेश करते हैं। उपनिषद्, गीता आदि शास्त्रमतों के अनुसार उत्तरायन को देवायन पथ एवं दक्षिणायन को पितृयान पथ कहा जाता है। कहा जाता है कि उत्तरायन में मृत्यु होने से मनुष्य सांसारिक बन्धनों से छुट जाता है और दक्षिणायन में मृत्यु होने से वह आवागमन के चक्र में फस जाता है–

अग्निर्ज्योतिरहः शुकलः षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः।।
धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम्।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते।।

अर्थात् ज्योतिर्मय अग्नि अभिमानी देवता है ओर दिन का अभिमानी देवता है तथा शुक्ल पक्ष का अभिमानी देवता है और उत्तरायण के छः महीनों का अभिमानी देवता है; उस मार्ग में मरकर गये हुए ब्रह्मवेत्ता योगीजन (उपरोक्त देवताओं द्वारा क्रम से ले गए हुए) ब्रह्मा को प्राप्त होते हैं। तथा जिस मार्ग में धूमाभिमानी देवता है और रात्रि-अभिमानी देवता है तथा कृष्णपक्ष का अभिमानी देवता है और दक्षिणायन के छह महीनों का अभिमानी देवता है, उस मार्ग में, (मरकर गया हुआ) सकाम कर्मयोगी (उपरोक्त देवताओं द्वारा क्रम से ले जाया गया हुआ) चन्द्रमा की ज्योति को प्राप्त होकर (स्वर्ग में अपने शुभ कर्मो का फल भोगकर) वापस आता हैं।

पितृयान का पथ प्रवृत्ति का पथ है और देवयान का पथ निवृत्ति का पथ है। साधको के भी दो स्तर हैं–प्रवत्तिमार्गी एवं निवृत्तिमार्गी। प्रवृत्तिमार्गी साधक धन, सम्पदा, पुत्र-कुलत्र, स्वर्ग आदि की प्राप्ति के लिए यागायज्ञ आदि विविध अनुष्ठान करते हैं। निवृत्तिमार्गी चाहते हैं–अपवर्ग और मुक्ति। ये समस्त सांसारिक बन्धनों से विरक्त होकर ब्रह्मोपासना मां लीन रहते हैं। पितृयान की अपेक्षा देवयान का मार्ग इसी कारण श्रेष्ठ है। दक्षिणायन का पथ अधंकार से पूर्ण है–कहीं से कोई प्रकाश की किरण तक नहीं दिखाई पड़ती, केवलमात्र अधंकार ही अधंकार चतुर्दिक रहता है। और देवयान का पथ पूर्वत: आलोकित है–प्रकाश ही प्रकाश–दीप्त से दीप्तचर होता हुआ आलोक। प्रथम मार्ग 'मृत्यु' की ओर ले जाता है तो द्वितीय मार्ग 'अमृत' की ओर। प्रवृत्ति-पन्थी मृत्यु के पश्चात् दक्षिणायन के अन्धकार-पथ से चन्द्रलोक जाते हैं, जहाँ स्वर्गीय मुखों की प्राप्ति होती है। परन्तु पुण्य के क्षय होने पर उन्हें फिर मृत्युमय अर्थात् नश्वर संसार मे लौट आना पड़ता है। किन्तु सगुण ब्रह्मोपासक निवृत्तिमार्गी साधक मृत्यु के बाद देवयान के आलोकित पथ से पहले सगुण

ब्रह्मलोक में जाते हैं, फिर जन्म न ग्रहण कर कालक्षय होने पर कल्पान्तर में वे मुक्त होते हैं। जो इस जीवन में ही अद्वैत ब्रह्मज्ञान की साधना करते हैं। वे जीवनमुक्त कहलाते हैं–उन्हें मृत्यु के पश्चात् लोकान्तर में जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

जीव का काम्य मुक्ति है। उसे दुःखों से निवृत्ति चाहिये, अमृत चाहिये और चाहिये केवल्य–ब्रह्मनिर्वाण। उत्तरायण में आनेवाली पौष की संक्रान्ति उसी दिव्य वरदान के लेकर आती है। पुण्यार्थी मनुष्यगण भारत के विविध प्रान्तों से गंगासागर में आ जुटते है। यह पथ दुर्गम है, फिर भी अगणित पुण्य-लोभातुर मुक्तिकामी मनुष्य आते हैं, और जाते है। किन्तु जो श्रेय वे चाहते है, वह भोग में नही योगे मे है–प्रवृत्ति में नही निवृत्ति मे छिपा है–यह अतीन्द्रिय रहस्य ही जानना होगा। गंगासागर–स्नान का तुरन्त लाभ तभी तो होगा!

गंगासागर–स्नान से वास्तव मे मुक्ति मिलती है?

गंगासागर तीर्थ के पावन सलिल में गतानुगतिक भाव से स्थूल भौतिक स्नान की प्रक्रिया से क्या वास्तव में मुक्ति की प्राप्ति होती है? अनन्त पापों का रत्क्षण खण्डन केवलमात्र स्नान से ही क्या संभव है? अनन्त पापों का तत्क्षण खण्डन केवलमात्र स्नान से ही क्या संभव है? नहीं, यह कदापि संभव नही। आचार्य शंकर ने सुसलित छन्द में गंगा की स्तुति की थी। उन्होने ही अन्य स्थान पर कहा है–ज्ञान के बिना, गंगासागर–स्नान, से शत जन्मों में भी मुक्ति नहीं मिलती। मुक्ति व्रत-प्रतिपालन या दान आदि कर्मो द्वारा भी संभव नहीं है–

कुरूते गंगासागरगमनं व्रतप्रतिपालन अथवा दानम्।
ज्ञानविहीने सर्वमनेन मुक्ति न जन्मशतेन।।

भक्ति तो वांछनीय है ही, उसके साथ ही इन्दियों का निग्रह करके काम पर विजय भी प्राप्त करनी होगी, साथ ही साथ निवृत्ति, योग एवं अतीन्द्रिय ज्ञान की साधना निष्टापूर्वक करना भी वांछनीय है। संसार में दुःख है, अयोध्या के सम्राट सगर को भी था। मातृगर्भ में उन्हें विष देकर मारने की चेष्टा की गयी थी। यद्यपि मुनि की कृपा से उनके प्राणों की रक्षा हुई और वे समस्त धरित्री के सम्राट हुए, तथापि उन्हें सुख कहाँ मिला? एक पुत्र असमंजम विपथगामी

हुआ, फलस्वरूप उसे त्याग दिया। दैवी कुचक्र से उनका यज्ञ भंग हुआ, जिससे और दु:ख और अशान्ति बढ़ी। इसके पश्चात् सांठ हजार पुत्रों की अकाल मृत्यु–उनके दु:ख की परिसीमा कहाँ है? मृत पुत्रों की मुक्ति की चिन्ता में ही राजा का सारा जीवन गल गया। सकाम अश्वमेध यज्ञ के अनुष्ठान द्वारा उन्होंने इच्छा की थी कि उन्हें ऐश्वर्य एवं स्वर्ग की प्राप्ति होगी। किन्तु साठ हजार पुत्रों के वियोग ने उनके मन मे विशुद्ध वैराग्य के भाव उत्पन्न कर दिये–उन्होंन प्रवृत्ति का मार्ग छोड़कर निवृत्ति का मार्ग अपनाया। उनके लिए स्वर्ग की अपेक्षा कैवल्य का मार्ग ही श्रेष्ठ था। महामुनि कपिल्ल ने राजा की साठ हजार सन्तान का नाश उन्हें अपवर्ग की चेतना देने के लिए ही किया था। नाश नही, कपिलदेव लाना चाहते थे अमर जीवन। युगाचार्य स्वामी प्रणवानन्दजी महाराज ने कहा था–"मृत्यु-चिन्ता मानव की रिपु की, उत्तेजना एव इन्द्रियों के उत्पीड़न से रक्षा करती हैं। मृत्यु-चिन्ता मनुष्य के भीतर विषय-वासना का नाश करके विवेक-वैराग्य को जगा देती है–भोग-विलास की स्पृहा का नाश करके विवेक मनुष्य के अन्तर सें विवेक वैराग्य जगा देती है।" एक समय राजा सिद्धार्थ भी इसी मृत्यु-चिन्ता के प्रभाव से ही राजसुख का त्याग कर निर्वाण की खोज में निकल पड़े थे। साठ हजार पुत्रों के मृत्युशोक ने निश्चय ही राजा के मन में अथवा चित्त में निर्वेद भाव की सृष्टि की होगी। मृत्यु का यही शोक इक्ष्वाकुवंशीय नृपतियो के मन में घनीभूत होकर बस गया था, जिससे उनका मन वैराग्य से मंडित हो गया था। प्रेय नही, वे व्रती थे श्रेय के! सगर, अंशुमान, दिलीय पाँन्त राजाओं का यही इतिहास रहा। दिलीप के बाद भगीरथ के जीवन में आयी चुणान्त साधन-सिद्धि। संत्रियों के ऊपर राजपाट का भार छोड़कर वे तपस्या के लिए गोकर्ण क्षेत्र में चले गये थे। सांख्य से उन्हें मिला था निर्वोद : अब योगशक्ति द्वारा सुप्त कुण्वलिनी को जागृत करेंगे।

भगीरथ का अर्थ है उत्तमांग विशिष्ट। ज्ञान-वीर्य-वैराग्यादि षड़तत्वों से मंडित था उनका तनुरथ, इसी कारण वे कहलाये भगीरथ। सर्वसुलक्षण-युक्त योग-शक्ति का यही योग्य आधार है। अपनी सत्ता की चैतन्य भूमि पर इड़ा-पिंगला-सषम्ना–त्रय नाड़ीरूपी त्रिपथगामिनी गंगा को अवतरित करेंगे।

ये तीनों नाड़ियाँ ब्रह्मरन्ध्र में सुप्त अवस्था में है–वही है ब्रह्मा का वरकमण्डलु। यही तो योगियो का मूलाधार चक्र है। योगी का कठोर कुच्छ्प आरंभ हुआ–संयत-चित्त, संयताचार, ब्रह्मचर्य-निष्ठ हुए वे। उन्होने कठोर तपस्या की–ग्रीष्म ऋतु में पंचाग्नि के मध्य खड़े होकर, हेमन्त में जलमग्न होकर, वर्षा में मुक्त आकाश के तले खड़े होकर। सब ऋतुओं में ही वृक्षों से स्खलित पत्रों का आहार करके कुछ काल तक तपस्या की, फिर पैरो के अंगूठों पर खड़े हैकर तपस्या की। ऊर्ध्वबाहु, निजालम्ब होकर वायु का भक्षण करके वे कुछ काल तक रहे। साधक की इसी कृच्छ् साधना से ब्रह्मा के कमण्डलु में बंद महाप्रकृति-स्वरूपा निस्तरंगा गंगा ने मुक्ति पायी थी। अर्थात कुलकुण्डलिनी महाशक्ति ने ब्रह्म ग्रन्थि का मेदन किया था। गर्जन करते-करते वह प्रवाह बढ़ चला सहस्रार की ओर–महा-अमृत समुद्र की ओर। विष्णु-वाहन गरूड़ ने तो पहले ही विष्णु-ग्रन्थि के भेदन का उपदेश दिया था। सुतरां, विष्णुपदी गंगा का मुक्तिरूपी प्रसाद साधक को कठोर तप के फलस्वरूप मिला। विष्णु अनन्त करुणामय हैं, विष्णुपदी माँ भी अशेष करुणामयी है। किन्तु सर्वशेष में रुद्रग्रन्थि के भेदन के लिए साधक को पुनश्च तपश्चर्या में व्रती होना होगा। भगवती गंगा अर्थात् कुलकुंण्डलिनी शक्ति शिव की धनी जटाओं में बन्दी हो गयें हैं। तपसंतुष्ट शंकर अपनी जटाओं की जटिल ग्रन्थि छिन्न करके गंगा अर्थात् कुलकुण्डलिनी शक्ति का निर्गमनपथ मुक्त करते है–रुद्रग्रन्थि खुल जाती है। यही पंर साधक के आत्मा का यथार्थ गंगा-सागर संगम है। इस संगम-स्थल पर तुरीय अवगाहन आवश्यक है। इन्द्रयग्राह्य प्राकृतिक जगत की सीमा का अतिक्रमण करके स्वसत्ता में अवगाहन करना होगा। जीवात्मा ओर परमात्मा के मिलन का जो संधिस्थल है, मुख्यार्थ में उसे तत्त्वमय गंगासागर-संगम कहा जाता है। योगियों की परिभाषा में इसे ही द्विदलविशिष्ट अज्ञाचक्र कहते हैं। इसी चक्र में आत्मज्ञानोपदेष्टा, कृपा-कल्पतरु श्रीगुरुशक्ति का अधिष्टान है। आदिज्ञान गुरु भगवान कपिल देव गंगासागर संगम में विराजमान है। इस रूपक को तोड़िये एवं तत्त्वचिन्ता में अवगाहन करिये। केवलमात्र स्थुय भौगोलिक अर्थ में नही, सुक्ष्म अध्यात्म-दर्शन एवं योगिक साधना के आलीक में इसका तात्पर्य अनुध्येय है। पुरुष का प्रकृति के बन्धन

से मुक्त करने के लिए, त्रिबिध दुःखों से जीवों को आत्यन्तिक निवृत्ति के लिए सांख्यचार्य रूप में, ज्ञानधन गुरु में भगवान कपिल इस तत्त्वज्ञान-सम्पृक्त महासागर संगम पर, इस आज्ञाचक्र में, इस ज्योतिर्मय बिन्दुतीर्थ पर नित्य विराजमान रहते है। आत्मिक मुक्ति के प्रयोजन से, आज्ञाचक्र के उपर अवस्थित अवगाहन का संकेत सादर ग्राह्य है। तभी तो गंगासागर-स्नान सार्थक है। इसके अभाव में तत्त्वज्ञानहीन, संयम-ब्रह्माचार्यहीन, तपश्चरणहीन, गतानुगतिक गंगासागर-स्नान हस्ति-स्नान के समान क्षणिक होगा।

आज्ञाचक्र का ही योगीजन ज्योतिर्द्रिप्त बिंन्दु सरोवर कहते है। यही ज्ञानभूमि है। गंगा की सप्तधराओं से सात विशेष ज्ञान-नाड़ियों का तात्पर्य है। जैसे सीताधारा = अध्यात्मदृष्टि: नलिनीधारा = आत्मसत्ता का विकास; सिन्धुधारा = सहसार कमल से अमृत का स्वत: क्षरण; कुचक्षुधारा = सर्वभूत में ब्रह्मदर्शन ('कु' अर्थात् आगाम-निगमादि वेदान्त का व्याख्यान); आह्लादिनी धारा – ब्रह्मानन्द-सुख; पावनीधारा = परामुक्ति; भागीरथी धारा दिव्य दैहलाभ, सोऽहम् ज्ञान-प्रतिष्ठा, मत्ता की कैवल्यापद प्राप्ति।

इन समस्त निगूढ़ रहस्यो को जानकर, ज्ञानपूर्वक जो गंगासागर तीर्थ में स्नान करेंगे, उन्हें निश्चय ही मुक्ति की प्राप्ति होगी। युगाचार्य स्वामी प्रणवानन्द जी महाराज की तीर्थ-उद्धार के पीछें यही प्रेरणा थी। व चाहते थे, कि प्रत्येक तीर्थ आत्मक मुक्ति की प्रेरणा का उत्स और ज्ञानीय ऐक्य का महासाधन-पीठ हो।

आज पौष की संक्रान्ति है–उत्तरायण है। देवयान का पथ अर्थात् मुक्ति के आलोक से उज्ज्वल सरणि के द्वार खुल गये हैं। कामशक्ति मकर भी आज माथे पर जढ़ बैठा है, बल्कि वह बैठा है माँ गंगा के पदतल पर – मातृवशीभूत है। आदये, इस पुण्यक्षण में गंगा-सागर-संगम में योगस्थ होकर, एकाग्र चित्त से माँ गंगा की मोक्षदायिनी-भावमयी मूर्ति का ध्यान करें, उनका स्तवन करें –

चर्तुर्भुजां त्रिनेत्रां सर्वावयवभूषिताम्।
रत्नुकुम्भां सिताम्भोजां वरदामभयप्रदाम्।।
श्वेतवस्त्रपरीधानां मुक्तामरिविभूषिनाम्।
चामरैर्वीज्यमा नास्व श्वेच्छत्रोपशोभित्मम्।।

ततो ध्यायेत् सुरूपांज्ज चन्द्रायुतसमप्रभाम्।
सुप्रसन्नां सुवदनां करूणार्द्रनिजान्तराम्।।
सुआप्लावितभूपृष्टामार्द्रागन्धानुलेपनां।
दिव्यरूपविभुषाञ्च दिव्यमाल्यानुलेपनाम्।। ॐ गंगायै नमः

देवी गंगा चतुर्भूजा, त्रिनेत्रा, सर्वावयव-विभुषिता, रत्नमय कुम्भ एवं श्वेतपद्म-धरिणी हैं। वे शवेतवस्त्र-परिहिता, मुक्तामणि-विभुषिता, अतिसन्दरी, अयुत चन्द्र के समान प्रमायुक्ता हैं। वे चामर के द्वारा आन्दोलित, शवेत ञत्र भे सुशोभिता, सुप्रसन्ना, सुबदना, करूणार्द्रचित्ता है। वे अपनी अमृतोपम जलराशि द्वारा भूपृष्ट को परिप्लवित कर रही हैं। वे गन्धद्रव्यों द्वारा र्चाचित हैं। ऐसी देवी को त्रिलोक नमस्कार करता है। देवता जनकी वन्दना करते हैं। दिव्यमालानुलेपन से विभूषिता देवी को हम भी सर्वदा नमस्कार करते हैं। उनका ध्यान धरते हैं। हे मातः! हे पतितोद्धारिणी गंगे! हमारी चेतना की भूमि को तुम अपने अमृतमय करूणा-जल द्वारा नित्य ही अभिषिक्त करो। इस अनित्य संसार के सुख-दुःखके अभिनय से जब शान्त होकर मै मृत्यूशय्या पर शायित हूँ, उस समय हे मातः, तुम्हारी कलकल-माधुर ध्वनि का ही श्रवण कर सकुँ। उस अमृत के सिंचन से अभिषिक्त होकर हे मातः, हम तुम्हारे ही स्त्रेहिल अंग में नित्य आश्रय ग्रहण करें।

हे मातः! तुम शंभु का निजस्व हो, उनके अंग से एकात्म हो। तुम्हारा प्रसाद जिसे मिला, वह मृत्युञ्जय हुआ – उसे न यम का भय रहता है न मृत्यु का – मृत्यु तो उसके लिए प्राण-प्रयाण का उत्सव मात्र है। कारण, तुम्हारे तीर पर मरण के वरण से आनन्द और मुक्ति का लाभ होता है। इसी कारण मस्तक पर करबद्ध प्रणाम करके कहता हुँ – माँ, मेरे अन्तिम समय में तुम्हारा पुण्य सलिल मेरे शरीर पर पड़े, मैं नारायण का नाम लेता-लेता एवं तुम्हारा स्मरण करता-करता ही अद्वैत हरिहरात्मकं ब्रह्म की पराभक्ति में, अचला भक्ति में लीन हो जाऊँ। मुझे परमगति की प्राप्ति हो–

मातः शान्तति शम्भुसंगमिलिते मौलो निधयाञ्जलिं।
त्वत्तीरे वपुषोऽवसानसमये नारायणाङ्घ्रिद्वयम्।।
त्वन्नाथ स्मरतो भविष्यति मम प्राणप्रयाणोत्सवे।
भूयाद्भक्तिरविच्युता हरिहराद्वैतात्मिका शश्वतो।।

गंगासागर मेला का क्रमिक इतिहास

गंगासागर दक्षिण-पश्चिम गंगा और ब्रह्मपुत्र के डेल्टा घर अवस्थित एक मौजा है। जो सागर द्वीप के सुदूर दक्षिणी छोर पर स्थित है। प्रतिवर्ष जब सूर्य मकर राशि में प्रवेश करता है। उस समय यहा मकर स्नान का मेला लगता है। यह तिथि लगभग प्रत्येक १४-१५ जनवरी को पड़ता है। यय समय पौष संक्रान्ति के नाम से भी जाना जाता है। यह मेला पश्चिमबंग सरकार की देख रेख में सम्पन्न होता है।

अतीत में सागर द्वीप अत्यन्त दुर्गम पथ-घाट बिहीन-निर्जन स्थान था। या सधन बन था जिसमें हिसंक जीव-जन्तु रहा करते थे। जंगली जानवरो के भय से तीर्थयात्री सूर्यास्त होते ही अपनी पड़ाव डाल लेते थे। तब गंगासागर आने-जाने का मार्ग अत्यन्त कठिन और कष्टकारक था। फिरभी पुण्यकामी तीर्थयात्री यहा आया करते। उस समय जलमार्ग के सिवा और कोई पथ ना था। आये दिन नौका दुर्घटना में यात्रियों की सलिल समाधि हुआ करती थी। जलपथ निरापद भी न था। जलदस्यु यात्रियों पर हमला कर लुट लेते। कभी-कभी कलेरा महामारी के चपेट में आकर निरीह तीर्थयात्री प्राण गवाते। कष्ट सहने के बाद भी यात्री गंगासागर पुण्य स्नान को आते।

यहाँ प्रतिवर्ष लगभग ४-६ लाख यात्रियों का समागम होता है। तब गंगासागर सम्पूर्ण भारतवर्ष भारतीय संस्कृति का मिलन क्षेत्र परिणत हो जाता है। सम्पूर्ण भारतवर्ष के अलावा नेपाल-भूटान-बंगलादेश, श्रीलंका तथा विश्व के अन्य देश से भी यात्रियों का समागम होता है।

प्राचीन मंदिर समुद्र द्वारा ग्रास करने के बाद प्रतिवर्ष उसी वेदी पर माट्टी, बाँस व बिचाली की सहायता से मंदिर निर्माण होता। शीतकाल के दौरान ज्यार का पानी कम होने के कारण मंदिर का चबुतरा ऊपर आ जाता। उस समय भी यहाँ काफी भीड़ होती थी। मंदिर के चबुतरे के पास एक विशाल वट-वृक्ष था जिसके नीचे श्रीरामचन्द्र और हनुमान जी की मूर्ति स्तापित थी। मंदिर के पीछे सीता कुण्ड था जिसका जल पीकर यात्री तृप्त होते। यह सीता कुण्ड प्रतिदिन खाली होने के बाद आश्चर्यजनक ढंग से भर जाता था। समुद्र द्वारा बार-बार मंदिर ग्रास करने पर सन १९७३ में श्री पंचनामी अखाड़ा हनुमानगटी अयोध्या के महन्थ ने समुद्र से दूर वर्तमान मंदिर का निर्माण कराया स्थायी मंदिर की देखरेख पंचनामी अखा के द्वारा ही संचालित होता है।

New Train Time

Sealdha to Namkhana	Namkhana to Sealdha
4.00	4.40
5.05	6.00
7.15	7.30
9.08	8.13
10.24	10.28
11.56	12.35
1.20	1.30
2.10	3.10
4.45	5.35
5.28	7.40
6.57	8.50
7.25	10.08

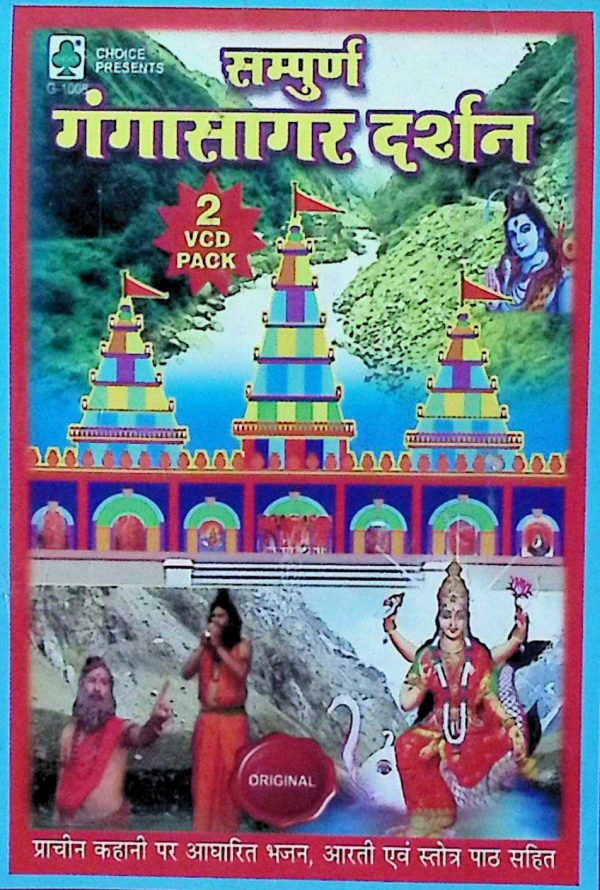

Vassel Time

Kachuberiya to Lot No.8	Lot No. 8 to Kachuberi
5.30	6.00
6.30	7.00
7.30	8.00
8.15	8.45
9.00	9.30
9.30	10.15
10.30	11.00
11.30	12.00
12.30	1.00
1.30	2.00
2.30	3.00.
3.30	4.00
4.15	4.48
5.00	5.30
5.45	6.15
6.30	7.00
7.15	8.00
8.00	9.00